Research Inspiration ISSN: 2455-443X
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed & Opened Access Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 1, Issue-II
March 2016
Impact Factor: 2.07 (IIJIF)

कबीर की भक्ति का सहज स्वरूप

डॉ0 शरद कुमार
विभागाध्यक्ष
हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय जक्खिनी, वाराणसी, भारत

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीरदास पहले व्यक्ति हैं जिन्हें भक्त के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है, जबकि कबीर को अपने जीवनकाल में कोई सम्मान नहीं मिला। तथाकथित निम्न या ओछी जाति में पैदा होने के कारण सदैव उनकी उपेक्षा की गयी साथ ही इनको उपहास का पात्र भी ठहराया गया कि बहुत बड़े उपदेशक बने हैं। कबीर को शारीरिक दण्ड भी दिया गया था। कुछ लोगों ने इनको सांकल एवं बेड़ियों में भी जकड़ कर रखा था। ऐसा स्वयं कबीर के कई पदों से इंगित भी होता है। कबीर के बाह्य रूप और इनके आविर्भाव के विषय में ही इतिहासकारों और साहित्य–समालोचकों में इतना मतभेद नहीं है जितना कि इनकी शक्तियों एवं मतविश्वासों के बारे में है। कबीर पर उपनिषद् के अद्वैतवाद और इस्लाम के एकेश्वरवाद का प्रभाव था। साथ ही कबीर पर वैष्णव भक्ति का गहरा प्रभाव है। सिद्धों एवं नाथपन्थियों की शब्दावली कबीर मुक्त रूप से अपनाते हैं और सहज रूप में उसको ग्राह्य भी करते हैं जबकि अपने आपको निपट गँवार एवं अज्ञानी भी बताते हैं। कबीर ने रामानन्द के सगुण राम को निर्गुण, वर्णनातीत, अगम्य एवं अपरिभाषित बना दिया। कबीर के अध्यात्म का कोई 'वाद' नहीं है वह हिन्दू–मुसलमान दोनों की तंगदिली और कट्टरपन की तीव्र निन्दा भी करते हैं।

कबीर के सम्बन्ध में नाभादास ने लिखा है कि– वह 'भक्ति विमुख' धर्म साधनाओं को अधर्म मानते थे। उन्होंने भक्ति की तुलना में योग, यज्ञ, व्रत, दान सभी को तुच्छ बताया है। भक्ति ही वह मूल तत्व है जो कबीर को नाथपन्थियों से बिल्कुल अलग कर देती है। कबीर ने दो प्रकार के भक्तों का उल्लेख किया है प्रथम पौराणिक भक्त जिसमें नारद, व्यास, शुकदेव आदि है तथा द्वितीय ऐतिहासिक भक्त जिसमें जयदेव एवं नामदेव का नाम लिया जाता है।

जहाँ कबीर की भक्ति का मूलतत्व हरि के प्रति उत्कट 'राग' है। वही कबीर जीवन की सार्थकता राम के प्रति आन्तरिक प्रेम से लेते हैं–

'कबीर जिहि घट प्रीत न प्रेम रस फुनि रसना नाहि राम।

Research Inspiration ISSN: 2455-443X
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed & Opened Access Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 1, Issue-II
March 2016
Impact Factor: 2.07 (IIJIF)

ते नर आइ संसार में, उपजि खये बे काम।।'

उत्कट राग या प्रेम–केन्द्रित होने के कारण ही कबीर ने अपनी भक्ति को 'प्रेम भगति' भी कहा हैं। यह प्रेम भगति वाह्य जगत से न होकर पूर्णतः मानसिक है। भक्ति साधना की सबसे पहली शर्त है कि मन को विषय वासना से विमुख करके राम की तरफ मोड़ना। राम के प्रति भावात्मक लगाव ही भक्त को उसके जीवन के निकट लाता है। कबीर ने वस्तुतः कहा है कि यद्यपि भगवान सभी के हृदय में निवास करते हैं फिर भी भाव के अभाव में सदैव दूरी बनी रहती हैं। मन की सच्ची भावना ही भक्त को सारे वाह्याचारों से अलग कर मानसिक स्वरूप प्रदान करती हैं जिससे भक्त को विग्रह के अर्चन, वंदन और पादसेवन की आवश्यकता नहीं रह जाती है। कबीर ने इसी भाव की सच्चाई पर बल देते हुए अनेक स्थलों पर अपनी भक्ति को भाव भगति कहा है।

कबीर की भाव भगति या प्रेम भगति को नारदी भक्ति भी माना जाता है, क्योंकि भक्ति के आचार्यों में नारद प्रसिद्ध हैं? नारद के अनुसार भक्ति ईश्वर में परम प्रेम रूप है। इस कारण समस्त कर्मों एवं आचारों को ईश्वर के प्रति अर्पित कर देना और उसके विस्मरण की स्थिति में अत्यन्त व्याकुलता का अनुभव करना ही भक्ति का सर्वप्रमुख लक्षण हैं। जहाँ तक भगवान के साथ सम्बन्ध का प्रश्न है कबीर सभी सम्बन्धों की चर्चा करते हैं जो सामान्यतः वैष्णव भक्ति परम्परा में मान्य है। इसी कारण कबीर अपने को राम का कुत्ता कहकर दास्यभाव की पराकाष्ठा का परिचय भी देते हैं। हरि को जननी और अपने को बालक रूप में प्रस्तुत कर वात्सल्य भाव को भी स्थापित करते हैं। राम को अपना प्रियतम और अपने को उनकी बहुरिया कहकर कान्ताभाव का भी परिचय दे देते हैं और इतना ही नहीं वियोग में अत्यन्त व्याकुलता का अनुभव करते हुए परम–विरहासक्ति तक भी पहुँच जाते हैं। नारद भक्ति सूत्र में इन सभी आसक्तियों का उल्लेख मिलता है।

यहाँ यह भी स्मरण रखना होगा कि भक्ति की व्याख्या करने वाले सभी आचार्य एवं गीता, महाभारत, भागवतपुराण आदि सभी ग्रन्थों में भक्ति के तात्त्विक स्वरूप की व्याख्या में कोई मौलिक भेद नहीं हैं। सभी लोगों ने भक्ति को अनुरक्तिमूला माना है। देखा जाय तो कबीर की भक्ति में सभी विधान किसी न किसी रूप में लक्षित हो जायेंगे। किन्तु सच्चाई यह है कि रामानन्द से कबीर ने राम के प्रति प्रेम का बीज भाव ही ग्रहण किया था।

भक्ति साधना के लिए कबीर को सारे संसार में मात्र दो प्रतीक उपयुक्त लगे– सती और शूर। कबीर को भक्ति साधना के क्षेत्र में ऐसे ही दृढ़ निश्चयी और निर्भय व्यक्ति की आवश्यकता थी। काम, क्रोध, लोभ, विषय–वासना आदि को जय करके ही ईश्वर को पाया जाता सकता है क्योंकि साधना का क्षेत्र भी एक प्रकार

Research Inspiration ISSN: 2455-443X
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed & Opened Access Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 1, Issue-II
March 2016
Impact Factor: 2.07 (IIJIF)

का युद्ध का मैदान ही है। इसलिए कबीर ने शूरवीर को सच्चे साधक का प्रतीक माना है और ठीक यही विशेषता सती में भी है। सती का मन अविचल होता है। वह संसार के सारे प्रलोभनों और आकर्षणों को त्यागकर मन में मात्र अपने प्रियतम के मिलन की भावना संजोये चिता पर चढ़ जाती है।

कबीर अपने आराध्य से किसी प्रकार की कामना नहीं करते क्योंकि वह जानते हैं कि आराध्य स्वयं निष्काम है। यदि किसी लोकेषणा की पूर्ति हेतु आराध्य की सेवा की गई तो वह निष्फल जायेगी। वस्तुतः जो संसार के सारे द्वन्द्वों से ऊपर उठकर सहज भाव से समत्व बुद्धि प्राप्त करके ईश्वर रूप होना चाहता है उसके लिए 'सकाम भक्ति' की बात सोची भी नहीं जा सकती है। सबसे प्रमुख बात है कि निष्कामता ही वह तत्व है जो मध्यकालीन भक्ति साधना को वैदिक भक्ति भावना से अलग कर देता है। जहाँ वैदिक आराधक अपनी तेजस्विता में अर्थार्थी है वही मध्यकालीन भक्त अपने दैन्य में निष्काम है।

कबीर के बारे में अक्सर यह प्रश्न खड़ा किया जाता है कि वह मूलतः ज्ञान साधक थे ? भक्त थे ? या योगी थे ? जबकि इतिहासकारों ने कबीर को भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत स्थान दिया है। कबीर को जानने वालों ने उन्हें योगियों की भ्रष्ट जाति से जोड़ा है और नाभादास ने उन्हें सच्चे भक्त के रूप में स्वीकार किया है। वस्तुतः कबीर के लिए ज्ञान–साधना, योग–साधना और भक्तिसाधना में कोई अन्तर नहीं था। जब सारे संसार में एक ही तत्व व्याप्त है तो फिर सब भेद–भाव व्यर्थ है। पण्डित और योगी, राजा और रंक, वैद्य और रोगी का भेद तो फिर अज्ञान का परिणाम है। इसलिए जब कबीर को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ तब उन्होंने काम–क्रोध आदि मनोविकारों को त्यागकर सबसे परे निर्वैयक्तिक भाव को अपना लिया। इस कारण कबीर भक्त से वह सब चाहते हैं जिसकी आशा एक सच्चे योगी और तत्वज्ञानी से की जा सकती है यदि योग से प्रदर्शन और कृच्छ साधना को निकाल कर उसे सहज बना दिया जाय, ज्ञान से मिथ्यादंभ एवं अहंकार निकालकर उसे विनयशील बना दिया जाय और भक्ति से अंधविश्वास एवं वाह्यपूजा विधान निकाल कर उसे शुद्ध रागात्मक प्रक्रिया में देखा जाय तो सामंजस्य का वह बिन्दु प्राप्त हो सकता है जहाँ पर खड़े होकर कबीर तथाकथित योगी, पंडित और भक्त तीनों को चुनौती दे देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. कबीर की विचारधारा– गोविन्द त्रिगुणायत।
2. कबीर और उनका काव्य– भोलानाथ तिवारी।
3. कबीर : एक विवेचन– सरनाम सिंह।
4. कबीर साहित्य समीक्षा– शिवचरण गुप्ता।
5. कबीर मीमांसा– रामचन्द्र तिवारी।
6. कबीर के धार्मिक विश्वास– धर्मपाल मैनी।